[Conference- Innovation in Music & Dance :January,2015] ISSN- 2350-0530(O) 2394-3629(P)
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i1SE.2015.3406

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

संगीत में नवाचार का इतिहास, ध्रुपद गायन शैली के सन्दर्भ में

प्रो. शर्मिला टेलर
कामना सिसोदिया
संगीत विभाग, वनस्थली विद्यापीठ

इतिहास की परम्परा में परिवर्तन होना प्रकृति की स्वाभाविक प्रक्रिया है। भारतीय शास्त्रीय संगीत जगत में ध्रुपद गायन शैली के सन्दर्भ मं हम ऐतिहासिक दृष्टि डालें तो इस शैली के पूर्व ध्रुवा एवं प्रबन्ध गीतों को गाने का प्रचलन था। ध्रुवा गीतों की परम्परा का क्रियात्मक रूप भरत के पूर्व से लेकर परवर्ती संस्कृत नाटक ग्रंथों में पाया जाता है। गीत रचना की दृष्टि से ध्रुवा का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

नाट्यारम्भ से पहले पूर्वरंग में प्रयुक्त बहिर्गीतों में भी ध्रुवाएं वाद्यप्रयोग की उपरंजक होने के कारण विशेष महत्व रखती हैं। मूलतः नाट्य की विभिन्न परिस्थितियों में रसानुभूति करा कर उन परिस्थितियों को तीव्र बनाने अथवा पात्रों के चरित्र को उभारने के लिए जिन छन्दोबद्ध गीतों का प्रयोग नाट्य के भीतर किया जाता है वे ध्रुवा कहलतीी है। गीतकों के विभिन्न अंगों का इनमें प्रयोग होने के कारण ये गीतकों से भी सम्बन्ध है।

''वाक्यावर्णा ह्यालकांरा लया यत्यथ पाषाण्यः।
पाणमः ध्रुवमन्योन्यसम्बद्ध यस्मात्तस्माद् ध्रुवाः स्मृताः।।

अर्थात् जिसमें वाक्य अर्थात् पद, वर्ण अर्थात् स्वर प्रयोग तथा लय, यति, पाणि अर्थात् ताल आदि का एक दूसरे से सम्बद्ध निश्चित रूप से स्थापित हो जाता है उसे ध्रुवा कहा जाता है। ''ध्रुवा ऐसा गेय पद है जो निश्चित रूप से किसी विशेष वृत्त में निबद्ध रहता है, जिसका छन्द यानी लघुगुरू क्रम तो नियत है लेकिन पात्र और प्रकृति के अनुसार पद योजना भिन्न हो सकती है और सताल या अताल किसी भी प्रकार का हो सकता है। नाट्य से सम्बन्धी पांच प्रकार की ध्रुवाएं मानी जाती थी–

1. प्रावेशिकी– जो अनेक प्रकार के अर्थों और रसों से युक्त ध्रुवा है जो प्रवेश के समय गाई जाती थी।
2. आक्षेपिकी– रसान्तर का आक्षेप कराने वाला गान आक्षेपगान या आक्षेपिकी कहलाती है।
3. नेश्क्रामिकी– रंगपीठ से पात्र के बाहर जाने के समय प्रयुक्त होने वाला निश्क्रामगान होता है।
4. प्रासादिकी– रंगस्थल में प्रविष्ट हुए पात्र की चित्रवृत्ति को समाजजनो के सम्मुख समप्रित करने के प्रयोजन से प्रस्तुत किया जाने वाला गान प्रासादिकी कहलाता है।
5. अन्तरा– 'अन्तर' का प्रसंग प्राप्त अर्थ है गति या परिक्रमण।

ऐसे अवसर पर जिस गान का प्रयोग हो वह अन्तरगान कहलाता है। ये गीतियों अभिनय विषय के सम्बन्ध में नवीन भाव उत्पन्न कर संक्षेप से ही विषय, प्रसंग, स्थान और सम्बन्धित पात्र का परिचय दर्षकों को देती थीं। ध्रुवा गीति की एक मुख्य विशेषता यह भी थी कि इन गीतों की रचना प्रायः प्राकृत भाषा में होती थी, अतः इनका गान प्रायः वृंद संगीत के साथ होता था।

ध्रुवा गान के पश्चात् प्रबन्ध गान का काल आया। मतंग के समय प्रबन्ध गान का महत्वपूर्ण स्थान था प्राचीन प्रबन्ध रचना के जो नियम ग्रंथों में अद्धृत किये गये है, उनके षडांग और 'चत्वारि धावतः' का बन्धन के लिए आवश्यक माना गया है। प्रबन्ध का अर्थ है विशेष से युक्त। सांगीतिक अर्थ में प्रकृष्ट रूप से बद्ध किसी भी सरंचना को प्रबन्ध कहा जाता है। यहां प्रबन्ध से अभिप्राय, बन्दिष निर्माण कला के उस भाग से है, जो स्पष्टता, क्रम, संतुलन एवं सापेक्षता के संदर्भ में उसकी आकृति एवं अंगभूत तत्वों के विवरण से सम्बन्धित हो। प्रबन्ध का अर्थ है बन्दिश, और बन्दिश का अधिक तकनीकी पक्ष वह है जो, अपनाए गए स्वर गठन तथा जिसमें उस स्वर गठन की अभिव्यक्ति की जाती है, समय की उन बड़ी या विभक्त इकाइयों का विवरण देने वाला हो। प्रबन्ध की उपयुक्त संज्ञा बन्दिश है और इस अर्थ में वह प्रबन्ध की पर्याय है। ''मतंग के काल (ई. 8) तक देषी संगीत में असंख्य प्रबन्धों का निर्माण हो चुका था। इनमें से कुछ के नाम निम्नानुसार है– कन्द, आर्या, गाथा, द्विपदी, त्रिपदी, चतुरंग, मातृका, वस्तु, हंसपद, गजलीला, कैवाट, एला इत्यादि। ये प्रबन्ध संस्कृत के अतिरिक्त लाट, कर्नाटक, गौड़, आंध्र एवं द्रविड़ भाषाओं में निबद्ध रहते थे। इनमें वर्ण्य वस्तु तथा गायक का नाम रहता था। स्वर, पद पाट (मृदंगाक्षर) तथा तेनक का यथोचित उपयोग इनमें किया जाता था। कैवाट नामक प्रबन्ध केवल पाट या तालाक्षरों से ही बनता था। झंप,

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

मठ, कंकाल तथा प्रतिकाल जैसे तालों में प्रबन्धों की रचना होती थी। ये प्रबन्ध रत्नाकर काल तक विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित रहे। प्रबन्ध के छः अंग स्वर, पद, पाट, विरूद, तेन्न व ताल कहे गए हैं।

स्वर– जो नाद स्वयं शोभित होते है, उसे स्वर कहा जाता है।
विरूद– विरूद प्रशंसा सूचक विशेषण पद है। जब विषयवस्तु में किसी राजा के या दैविक व्यक्तित्व के गुण विशेष का विवरण दिया जाता हो, उसे विरूद कहा जाता है।
पद– अर्थ के प्रकाशक सार्थक शब्दों को पद कहा जाता है। पद प्रबन्ध को अर्थ प्रदान करता है।
तेन– प्रबन्ध में मंगल सूचक शब्दों का प्रयोग 'तेन' कहलाता है।
पाट– वाद्यों से उत्पन्न होने वाले वर्ण पाटाक्षर कहलाते हैं। वाघाअक्षरों का उच्चारण ही पाट कहलाता है।
ताल– संगीत क्रिया में लगने वाले समय में माप को ताल कहा जाता है।

प्रबन्ध रचना के अन्तर्गत किसी प्रबन्ध में दो अंग, किसी में तीन या चार अंग होते थे अथवा सभी अंगों का होना आवश्यक नहीं था।

''पं. शारंगदेव ने अपने पूर्व के 75 प्रबन्धों और उनके भेदों का विवरण दिया है। इनमें से 'सालगसूड' नामक प्रबन्ध विशेष प्रचार में थे। इनका नामकरण तालों के अनुसार होता था, जैसे– ध्रुव, मण्ठ, प्रतिमण्ठ, निःसारूक, अड्डताल, रासताल और एकताल

किसी भी नवीन शैली का प्रभाव जन मानस पर तब तक नहीं पड़ता जब तक कि उसमें कुछ शास्त्रसम्मत आधार न हो। संगीत पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण डालें तो हमें यह ज्ञात होता है कि प्रबन्ध शैली जो प्राचीन काल से मध्यकाल के पूर्व भाग अर्थात् 14वीं शताब्दी तक अपने चरमोत्कर्ष पर रही। प्रबन्ध से ध्रुपद का सफर बहुत ही सहज व लोकरूचि के अनुकूल रहा। ऐतिहासिक दृष्टि से हम यह पाते हैं कि प्रबन्ध का अस्तित्व अकबर के काल से पहले था। 13वीं शताब्दी तक जबकि संगीत रत्नाकर ग्रंथ का निर्माण हुआ, हम प्रबन्ध का स्वरूप उसके धातु व अंगो के विस्तार के साथ व परम्परागत स्वरूप के अनुसार देख सकते हैं। इसके नियम बहुत ही कठोर व अपरिवर्तनीय थे। देखा जाय तो यह कहने की आवष्यकता ही नही हैं कि लोकरूचि व समय काल परिवर्तन के अनुसार कोई भी कला अपने मूल अस्तित्व में रहते हुए भी किंचित परिवर्तनों के साथ अपना स्थूल रूप खो देती है या नाम में परिवर्तन के साथ प्रचलित रहती है। भले ही ध्रुपद शब्द नया था किन्तु इसके तत्व प्रबन्ध में अपने आप को समाहित किए हुए थे। जिस प्रकार प्रबन्ध शैली में संस्कृत भाषा का प्रयोग था उसी प्रकार ध्रुपद में भी संस्कृत भाषा की प्रचुरता रही। ध्रुपदों में आरम्भ में मूलतः संस्कृत भाषा का ही प्रयोग रहा है तथा प्रबन्धों का पूर्व प्रभाव था। जब मध्यदेषीय भाषा स्थिर हुई तब यह अनिवार्य था कि संगीत में भी तदानुसार परिवर्तन हो। ग्वालियर के तोमरवंषीय राजा मानसिंह ने भारतीय संगीत को सुलभ बोधगम्य एवं लोकप्रिय बनाने के लिए उसके सर्वांगीण विकास एवं प्रचार के लिए योजनापूर्वक कार्य किये थे। मानसिंह ने प्राचीन ध्रुपद पद्धति में संषोधन करते हुए उसे मध्यदेषीय भाषा अर्थात् ब्रजभाषा का संबल प्रदान कर लोक भाषायुक्त ध्रुपद शैली का परिष्कार किया। इस प्रकार ध्रुपद को राजदरबार में तथा जनसामान्य में विषिष्ट स्थान मिल जाने से प्रबन्ध धीरे–धीरे लुप्त प्राय होते गये तथा ध्रुपद शैली का विकास हुआ। ''पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने अपनी पुस्तक उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास में राजा मानसिंह को ही वर्तमान ध्रुपद शैली का प्रवर्तक माना है। राजा मानसिंह ने विष्णुपदों के रूप में भक्ति परक पदों की रचना कराई तथा दरबारी संगीत को लोक जीवन के निकट लाने का सफल प्रयत्न किया। बैजू, बख्शू, चरजू आदि प्रसिद्ध गायक उनके दरबारी संगीतज्ञ थे, जिनकी सहायता से 'मानकुतूहल' ग्रन्थ की रचना की गई। मानसिंह के इस अद्भूत नवाचार के लिए गायन शास्त्र सदा उनका आभारी रहेगा। तत्कालिक समय में ध्रुपद गायन शैली तथा उसमें ब्रज भाषा का प्रयोग एक नवीन प्रयोग था जिसे संगीत समाज ने खुले दिल से अपनाया व जन मानस तक पहुँचाया।

धीरे–धीरे संगीत का भाग्य बुलंदी पर आया, ध्रुपद गायन के स्थान पर ख्याल गायन शैली का महत्व बढ़ने लगा। ''ग्वालियर गायकी और आगरा गायकी के ख्याल शैलियों में ध्रुपद शैली के सैद्धान्तिक आधार की मान्यता थी। इन घरानों की व्यावहारिक शैली की गरिमा और श्रेष्ठता का कारण भी यही था। जहाँ तक गायकी का सम्बन्ध है, आगरा घराने की गायकी का बड़ा गहरा सम्बन्ध ग्वालियर की गायकी से रहा है। आगरा घराने के आदि पुरूष अकबर युग के हाजी सुजान खां ध्रुपद, धमार और ख्याल शैली के विशेषज्ञ माने जाने जाते थे। ''उस्ताद फैयाज खां जैसे बेजोड़ गायक ने आलाप और धमार की कठिन और उत्तम शैली को इतना लोकप्रिय और रोचक बनाया। ख्याल गायक होते हुए भी इन्होंने ध्रुपद पद्धति के व्यावहारिक संगीत का पूर्ण रूप से प्रचार किया। ख्याल गायन शैली के विकास के पूर्व ध्रुपद शैली अपने चरम विकास पर स्थित थी और

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

ख्याल ध्रुपद अंग में किये हुए विकास का ही नाम है। ''कल्पना के उड़ानों से परिपूर्ण ध्रुपद के अनुपात से छोटी, मात्र स्थायी अन्तरा, रीतिकालीन प्रभाव से श्रृंगार रस की बहुलता वाली तथा गिनी–चुनी तालों में प्रयुक्त होने वाली ख्याल अंग की रचनाएं राजाश्रय पाकर एवं शैली प्रस्तुतिकरण, क्षेत्रिय विशालता कारण अतिअल्प समय में सम्पूर्ण भारत में छा गयी।

ऐसा मान्य है कि मध्यकालीन ध्रुपद शैली के आधार पर ख्याल गायन शैली की रचना हुई। वर्तमान समय के ख्याल गायन शैली के कुछ घरानों में ध्रुपद की छाया आज भी परिलक्षित होती है। जैसे आगरा घराने में ध्रुपद गायन शैली की भाँति खुली आवाज़ और उच्चारण के साथ पाटदार आवाज का प्रयोग होता है। नोमतोम् के आलापों में हकार, अकार, आकार, उकार, रकार एवं रीकार आदि बोलों के प्रयोग के साथ लयकारी के प्रयोग आदि में खुला स्वरोच्चारण रहता है। उसीप्रकार दरभंगा घराने की गायन शैली में ध्रुपद के समक्ष बलपूर्ण, जोरदार, ठोस, पाटदार, खुली हुई गायकी होती है। ''ध्रुपद की लयकारी की दृष्टि से यह घराना अपना एक विषिष्ट स्थान रखता है। अतः आज भी अनेक ऐसे घराने हैं जिसमें ख्याल गायन शैली में ध्रुपद की झलक देखने को मिलती है।

पुरातन ख्याल गायन शैली अधिकांषतः ध्रुपद के ही अनुरूप है क्रमषः विविध प्रकार के अलंकार, तान आदि युक्त होने से ख्याल का एक स्वतंत्र रूप गठित हो गया। ''ध्रुपद की लयकारिता एवं कव्वाली की तान के सम्मिश्रण से ख्याल गायकी का निर्माण हुआ। जिनकी रचनाओं में साहित्य ब्रजभाषा, हिन्दी, पंजाबी तथा अन्य लोकभाषाओं का मिश्रण पाया गया। अतः शास्त्रीय संगीत में ध्रुवा से प्रबन्ध, प्रबन्ध से ध्रुपद तथा ध्रुपद से ख्याल इसी ऐतिहासिक नवाचार की कड़ी में दृष्टिगत होता है। किन्तु ख्याल गायन शैली में ध्रुपद गायन शैली के तत्व वर्तमान में भी प्रयुक्त होते दिखाई देते हैं जिसे हम परिवर्तन में परम्परा का दृष्टिगोचर होना कह सकते हैं।

सन्दर्भ –

1 *कुमार, डॉ. विजय, भारतीय संगीत में शुष्काक्षरों के प्रयोग की परम्परा, नैतिक प्रकाषन, गाजियाबाद (उ. प्र.), 2013*
2 *चौधरी, डॉ. सुभद्रा, भारतीय संगीत में ताल और रूप विधान, कृष्णा ब्रदर्स, महात्मा गांधी मार्ग, अजमेर, 1984*
3 *संगीत कला विहार, जनवरी 1996, अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मण्डल, महाराष्ट्र*
4 *परांजपे डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर, संगीत बोध, मध्य प्रदेष ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1972.*
5 *बांगरे, डॉ. अरूण, ग्वालियर की संगीत परम्परा, कनिष्क पब्लिषर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 1996*
6 *बनर्जी, डॉ. असित कुमार, हिन्दुस्तानी संगीतः परिवर्तनषीलता, शारदा पब्लिषिंग हाउस, दिल्ली 1992.*
7 *सिन्हा, डॉ. ज्योति, संगीत सारांष, ऑमेगा पब्लिकेषन्स, न्यू दिल्ली, 2012*
8 *तैलंग, डॉ. मधुभट्ट, ध्रुपद गायन परम्परा, जवाहर कला केन्द्र जयपुर, 1995*
9 *शर्मा, डॉ. भगवतीलाल, मान पदावली, संगीत।*